राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

खंडपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 14655/2022

1. शंभू लाल पुत्र बिरदीलाल, उम्र लगभग 64 वर्ष, निवासी केयर ऑफ ओ.पी. खंडेलवाल, 1-सी, 18, तलवंडी, राज. हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, कोटा, राजस्थान। (पूर्व अनुपालन उपनिदेशक, जनगणना संचालन कोटा, राजस्थान) ग्रुप सी
2. अशोक कुमार पुत्र सूरजमल, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी ग्राम तेलहा, तहसील दीगोद, जिला कोटा, राजस्थान। (पूर्व चतुर्थ श्रेणी/दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी, जनगणना संचालन कोटा, राजस्थान के उप निदेशक) ग्रुप डी
3. दान मल पुत्र धन्ना लाल, उम्र लगभग 60 वर्ष, निवासी सरकार के पास। प्राथमिक विद्यालय, शिवपुरा, कोटा, राजस्थान। (पूर्व अनुपालन कर्मचारी जनगणना संचालन कोटा, राजस्थान के उप निदेशक) ग्रुप सी

----याचिकाकर्तागण

बनाम

1. भारत संघ-सचिव गृह मंत्रालय, भारत सरकार नॉर्थ ब्लॉक, केंद्रीय सचिवालय, नई दिल्ली-110001 के माध्यम से।
2. जनगणना संचालन निदेशक राजस्थान, 6 बी, झालाना डूंगरी, जयपुर।

----प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता (गण) की ओर से : श्री संपत लाल सोनगरा

माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव

माननीय न्यायमूर्ति अनिल कुमार उपमन

निर्णय

17/05/2023

माननीय अनिल कुमार उपमन, न्यायमूर्ति

रिपोर्टेबल

सुना।

इस रिट याचिका में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, जयपुर खंडपीठ, जयपुर

(इसके बाद 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित दिनांक 12.07.2022 के निर्णय के विरूद्ध है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा उनकी मौखिक आलोचना करते हुए दायर किए गए मूल आवेदन ('ओए') जिनमें बर्खास्तगी आदेश दिनांक 30.06.1992/ 01.07.1992 को चुनौति दी गई थी, खारिज कर दिये गये।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज करने में तथ्यों और कानून की गंभीर त्रुटि की है। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी अधिवक्ता की कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण थी क्योंकि स्वीकृत पदों पर अल्पावधि के लिए विभिन्न पदों पर भर्ती के लिए दिनांक 23.03.1991 को विज्ञापन जारी किया गया था और इसे संविदात्मक रोजगार नहीं माना जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं की सेवाएं समाप्त करने से पहले, याचिकाकर्ताओं को कोई पूर्व नोटिस नहीं दिया गया था। याचिकाकर्ताओं ने बारह पूर्ववर्ती कैलेंडर महीनों में 240 दिनों से अधिक काम किया था। उन्होंने आगे कहा कि पद 31.12.1993 तक उपलब्ध थे और इस प्रकार, 31.12.1993 से पहले याचिकाकर्ताओं की सेवाओं की बर्खास्तगी अवैध है। उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया:-

1. हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब स्टेट वेयरहाउसिंग कॉर्पोरेशन: 2010 सीडीआर 401 (एससी),
2. एच.पी. हाउसिंग बोर्ड बनाम ओम पाल एवं अन्य: एआईआर 1997 उच्चतम न्यायालय 2685,
3. राष्ट्रीय चतुर्थ श्रेणी रेलवे मजदूर कांग्रेस (आईएनटीयूसी) बनाम यूओआई और अन्य : एआईआर 1997 उच्चतम न्यायालय 3492, और
4. के. अंबाझगन और अन्य बनाम रजिस्ट्रार जनरल उच्च न्यायालय मद्रास एवं अन्य : एआईआर 2018 उच्चतम न्यायालय 3803।

इस मामले ने इतिहास को उलझा दिया है। विज्ञापन दिनांक 23.03.1991 के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं को जनगणना कार्य हेतु निदेशक, जनगणना, राजस्थान, जयपुर द्वारा समेकित वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्होंने जुलाई, 1991/सितंबर, 1991 से जून, 1992 तक विभाग में सेवा की। उनकी सेवाएँ उन्हें कोई पूर्व सूचना दिए बिना मौखिक आदेश दिनांक 30.06.1992/01.07.1992 द्वारा समाप्त कर दी गईं। यह

मुकदमेबाजी का तीसरा दौर है क्योंकि सबसे पहले वर्ष 1992 में ही, रिट याचिका संख्या 4295/1992 दायर करके उपरोक्त मौखिक बर्खास्तगी आदेशों को चुनौति दी गई थी। उक्त याचिका का निपटारा दिनांक 09.05.1997 के आदेश द्वारा कर दिया गया और याचिकाकर्ताओं को वैकल्पिक उपाय का लाभ उठाने की अनुमति दी गई। विद्वान एकलपीठ द्वारा दी गई स्वतंत्रता के अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं द्वारा एक औद्योगिक विवाद उठाया गया था, जिस पर विद्वान श्रम न्यायालय में एक संदर्भ किया गया था। याचिकाकर्ताओं द्वारा विद्वान श्रम न्यायालय के समक्ष दावे का विवरण प्रस्तुत किया गया था जिसका उत्तर प्रत्यर्थी विभाग द्वारा दिया गया था और दोनों पक्षों के साक्ष्य लेने के बाद, संदर्भ को दिनांक 21.11.2012 के निर्णय के तहत नकारात्मक उत्तर दिया गया था। विद्वान श्रम न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज करते हुए कहा कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति प्रकृति में संविदात्मक थी और अनुबंध अवधि के अंत में उनकी सेवाएँ स्वतः समाप्त हो गईं। याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट याचिकाएं दायर करके उक्त पंचाट को चुनौति दी गई थी और इन सभी रिट याचिकाओं को भी सामान्य आदेश दिनांक 19.07.2017 के माध्यम से यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ताओं और विभाग के बीच एक अनुबंध मौजूद है और उस अनुबंध के तहत, उन्होंने जून, 1992 तक काम किया। आगे यह माना गया कि अनुबंध के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति अनुबंध के तहत एक निश्चित अवधि के लिए थी और अनुबंध की अवधि के बाद, उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। रिट याचिकाओं को खारिज करते समय यह भी विचार किया गया कि जो पद 31.12.1993 तक उपलब्ध थे वे स्थायी प्रकृति के पदों से संबंधित थे और जो 31.12.1993 तक जारी थे और उसके बाद ऐसे पद भी समाप्त कर दिए गए थे। विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश को इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विशेष अपील दायर करके चुनौती दी गई। दिनांक 03.04.2018 के आदेश के तहत इन अपीलों का निपटारा करते हुए, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने याचिकाकर्ताओं को बर्खास्तगी के आदेश का विरोध करने के लिए वाद करने की स्वतंत्रता दी। उपरोक्त स्वतंत्रता की आड़ में, याचिकाकर्ताओं द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष मूल आवेदन प्रस्तुत किए गए थे, जिन्हें सोमवार के निर्णय दिनांक 22.07.2022 द्वारा खारिज कर दिया गया था। दिनांक 22.07.2022 के आक्षेपित निर्णय से व्यथित एवं असंतुष्ट होकर यह रिट याचिका दायर की गई है।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होते हैं क्योंकि वे अलग-अलग तथ्यात्मक मैट्रिक्स में पारित किए गए थे और उन मामलों में, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के नियमितीकरण या उल्लंघन का मुद्दा शामिल था लेकिन वर्तमान में मामले में याचिकाकर्ताओं की सेवा बर्खास्तगी सवालों के घेरे में है। याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर ओए पर निर्णय लेते समय, ट्रिब्यूनल ने सही माना है कि याचिकाकर्ताओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उनकी सेवाएं मौखिक रूप से समाप्त कर दी गई थीं, इसलिए रिकॉर्ड पर कोई आदेश उपलब्ध नहीं है जिसे प्रशासनिक ट्रिब्यूनल अधिनियम, 1985 की धारा 19 के तहत चुनौती दी जा सके। हम ट्रिब्यूनल द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष से भी सहमत हैं कि ट्रिब्यूनल के पास केवल इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 03.04.2018 के आदेश के तहत दी गई स्वतंत्रता के आधार पर ओए पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, जिसे तात्कालीक संदर्भ के लिए यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपील में उठाए गए मुद्दों पर विस्तृत दलीलें दीं, लेकिन उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि जनगणना विभाग औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 2 (ञ) के अनुसार "उद्योग" की परिभाषा में कैसे आता है। (संक्षेप में '1947 का अधिनियम')। विद्वान श्रम न्यायालय ने मोहम्मद राजमोहम्मद बनाम औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय वरंगल और अन्य के मामले में 2003 (2) एलएलजे 1149 में प्रकाशित निर्णय का संदर्भ दिया है जिसके अनुसार जनगणना विभाग "उद्योग" की परिभाषा में नहीं आता है।

इस स्तर पर, अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि जनगणना विभाग "उद्योग" की परिभाषा में नहीं आता है, जैसा कि 1947 के अधिनियम के तहत दिया गया है, तो उसे रिट याचिका या किसी अन्य उपाय को कायम रखकर राहत की अनुमति दी जा सकती है। वर्तमान मुकदमे को वापस लेना. हालाँकि, यह कहा गया है कि, शुरू में, एक रिट याचिका दायर की गई थी, लेकिन इसे 1947 के अधिनियम के तहत उपाय की उपलब्धता को देखते हुए खारिज कर दिया गया था और उसके बाद विशेष अपील भी खारिज कर दी गई थी, हालांकि उपरोक्त उपाय इस तथ्य के मद्देनजर उपलब्ध नहीं था कि जनगणना विभाग 1947 के अधिनियम की धारा 2(ञ) के तहत दी गई "उद्योग" की परिभाषा में नहीं आता है।

अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता के बयान के मद्देनजर, हम 1947 के अधिनियम की धारा 25-एफ के कथित उल्लंघन के संदर्भ में या धारा 2(ओओ)(बीबी) के अनुप्रयोग के संदर्भ में श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं। 1947 के अधिनियम के बजाय, बल्कि अपीलार्थियों को बर्खास्तगी के आदेश को चुनौति देकर राहत पाने की स्वतंत्रता दी गई है। आक्षेपित पंचाट के साथ-साथ विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय उपरोक्त के लिए उनके आड़े नहीं आएगा।

उपरोक्त के साथ, अपीलें निस्तारित की जाती हैं। अपीलों के निस्तारण के दृष्टिगत विलम्ब क्षमा प्रार्थना पत्रों पर कोई प्रतिवाद नहीं किया गया है। तदनुसार, आवेदनों को अनुमति दी जाती है और अपील दायर करने में हुई देरी को माफ किया जाता है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्येक संबंधित अपील में रखी जाए।"

उपरोक्त आदेश के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता बर्खास्तगी के आदेश को चुनौति देने हेतु राहत पाने के लिए स्वतंत्र हैं, जिसका मतलब यह नहीं है कि ट्रिब्यूनल को उनके ओए पर विचार करना चाहिए। हमने रिकॉर्ड से पाया कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति एक विशिष्ट अवधि के लिए अनुबंध के तहत थी और उक्त अनुबंध अनुबंध आर/1 और अनुबंध-आर/2 के रूप में ट्रिब्यूनल के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे। अनुबंधों के अनुसार, याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति निश्चित वेतन के आधार पर एक निश्चित अवधि के लिए थी और उनकी सेवाएं अनुबंध अवधि के अंत में समाप्त हो गईं और इन अनुबंधों पर याचिकाकर्ताओं द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और वे इन अनुबंधों की शर्तों से अवगत थे। हमारे विचार में, एक संविदा कर्मचारी को अनुबंध की अवधि समाप्त होने के बाद उक्त पद पर बने रहने का कोई निहित अधिकार नहीं है और वह अधिकार के तौर पर अनुबंध के विस्तार का दावा नहीं कर सकता है।

हम सचिव, **कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमादेवी और अन्य, (2006) 4 एससीसी 1 (संविधान पीठ)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से अपना दृष्टिकोण मजबूत करते हैं। जिसमें यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

"45. यह निर्देश देते समय कि नियुक्तियाँ, चाहे अस्थायी हों या आकस्मिक, नियमित या स्थायी की जाएँ, न्यायालय इस तथ्य से प्रभावित होती हैं कि संबंधित व्यक्ति ने कुछ समय के

लिए और कुछ मामलों में काफी समय तक काम किया है। ऐसा नहीं है कि जो व्यक्ति किसी अस्थायी या आकस्मिक प्रकृति के अनुबंध को स्वीकार करता है, उसे अपने रोजगार की प्रकृति के बारे में पता नहीं होता है। वह रोजगार को खुली आंखों से स्वीकार करता है। यह सच हो सकता है कि वह मोल-भाव करने की स्थिति में नहीं है- बिना किसी दूरी के- चूँकि वह अपनी आजीविका चलाने के लिए किसी रोज़गार की तलाश कर रहा होगा और जो कुछ भी उसे मिलता है उसे स्वीकार कर लेता है। लेकिन केवल उस आधार पर, नियुक्ति की संवैधानिक योजना को खारिज करना और यह विचार करना उचित नहीं होगा कि जिस व्यक्ति के पास अस्थायी या आकस्मिक रूप से नौकरी पाने वाले को स्थायी रूप से जारी रखने का निर्देश दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से, यह सार्वजनिक नियुक्ति का एक और तरीका तैयार करेगा जो स्वीकार्य नहीं है। यदि न्यायालय इस आधार पर इस प्रकृति के संविदात्मक रोजगार को रद्द कर देती है कि पार्टियों के पास समान सौदेबाजी की शक्ति नहीं है, तो इससे भी न्यायालय उस कर्मचारी को कोई राहत देने में सक्षम नहीं होगी। प्रशासन की अनिवार्यताओं को देखते हुए, ऐसे आकस्मिक या अस्थायी रोजगार पर पूर्ण प्रतिबंध संभव नहीं है और यदि लगाया जाता है, तो इसका मतलब केवल यह होगा कि कुछ लोग जो कम से कम अस्थायी, संविदात्मक या आकस्मिक रूप से रोजगार प्राप्त करते हैं, उन्हें ऐसा रोजगार प्राप्त होने पर वह रोजगार भी नहीं मिलेगा। रोजगार से उन्हें कम से कम कुछ सहायता मिलती है। आख़िरकार, हमारे विशाल देश के असंख्य नागरिक रोज़गार की तलाश में हैं और यदि कोई ऐसे रोज़गार में जाने का इच्छुक नहीं है तो वह आकस्मिक या अस्थायी रोज़गार स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। यह उस संदर्भ में है कि किसी को इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि रोजगार की प्रकृति और उससे उत्पन्न होने वाले परिणामों को पूरी तरह से जानते हुए स्वीकार किया गया था। दूसरे शब्दों में, रोजगार स्वीकार करते समय भी, संबंधित व्यक्ति को अपने रोजगार की प्रकृति का पता होता है। यह वास्तविक अर्थों में किसी पद पर नियुक्ति नहीं है। जिस पद पर वह अस्थायी रूप से कार्यरत है, उस पद पर उसके द्वारा अर्जित दावे या उस पद में रुचि को इतना बड़ा नहीं माना जा सकता है कि राज्य की सेवाओं में उपलब्ध पदों पर नियमित नियुक्तियाँ करने के लिए स्थापित प्रक्रिया को छोड़ा जा सके। यह तर्क कि चूंकि कोई इस पद पर कुछ समय से काम कर रहा है, तो उसे नौकरी से हटा देना न्यायसंगत नहीं होगा, भले ही जब उसने पहली बार यह काम शुरू किया था तो उसे इसकी प्रकृति के बारे में पता था, लेकिन ऐसा नहीं है। सार्वजनिक रोजगार के लिए कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को खारिज करने में सक्षम और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित संवैधानिकता और अवसर की समानता की कसौटी पर परीक्षण किए जाने पर विफल हो जाएगा।

47. जब कोई व्यक्ति अस्थायी रोजगार ग्रहण करता है या संविदात्मक या आकस्मिक

कर्मचारी के रूप में नियुक्ति लेता है और नियुक्ति प्रासंगिक नियमों या प्रक्रिया द्वारा मान्यता प्राप्त उचित चयन पर आधारित नहीं होती है, तो उसे नियुक्ति के अस्थायी, आकस्मिक या संविदात्मक होने के परिणामों के बारे में पता होता है। ऐसा व्यक्ति पद पर स्थायी होने की वैध उम्मीद के सिद्धांत का सहारा नहीं ले सकता, जबकि पद पर नियुक्ति केवल चयन के लिए उचित प्रक्रिया का पालन करके और संबंधित मामलों में, लोक सेवा आयोग के परामर्श से ही की जा सकती है। इसलिए, वैध अपेक्षा के सिद्धांत को अस्थायी, संविदा या आकस्मिक कर्मचारियों द्वारा सफलतापूर्वक आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। यह भी नहीं माना जा सकता कि राज्य ने इन व्यक्तियों को नियुक्त करते समय या तो उन्हें जहां वे हैं वहीं जारी रखने या उन्हें स्थायी करने का कोई वादा किया है। राज्य संवैधानिक रूप से ऐसा वादा नहीं कर सकता। यह भी स्पष्ट है कि पद पर स्थायी किए जाने की सकारात्मक राहत पाने के लिए इस सिद्धांत का सहारा नहीं लिया जा सकता है।"

बटाला कॉप शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम सोवरन सिंह, (2005) 8 एससीसी 481 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय की वैधता ने प्रबंधन द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया और पंचाट को बरकरार रखते हुए उन्हें पीठासीन अधिकारी बना दिया। श्रम न्यायालय को पूछताछ के लिए बुलाया गया था। इस मामले में, व्यक्ति ने राज्य सरकार के समक्ष शिकायत की कि प्रबंधन द्वारा उसकी सेवाओं को अवैध रूप से समाप्त कर दिया गया है। राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद की धारा 10(1) के तहत न्यायनिर्णयन के लिए संदर्भ दिया गया था। श्रम न्यायालय का विचार था कि यद्यपि नियोक्ता का रुख यह था कि प्रत्यर्थी कामगार को विशिष्ट कार्य के लिए और एक निर्दिष्ट अवधि के लिए दैनिक वेतन पर आकस्मिक आधार पर नियोजित किया गया था, फिर भी कामगार के रुख के संबंध में गोलमोल जवाब दिया गया था कि उसे अप्रैल, 1986 में नियुक्त किया था। श्रम न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 25-च का उल्लंघन था। 50 प्रतिशत पिछले वेतन के साथ कर्मी को बहाल करने का निर्देश दिया गया। नियोक्ता ने एक रिट याचिका दायर की जिसे उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। यह माना गया कि पंचाट में कोई कानूनी या तथ्यात्मक कमी नहीं थी। अपील के समर्थन में, प्रबंधन के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि श्रम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने तथ्यात्मक और कानूनी रूप से गलत आधार पर कार्रवाई करके गंभीर गलती की है और अपीलार्थी का रुख यह था कि कामगार दैनिक आधार पर काम पर लगा हुआ था। विशिष्ट कार्य के लिए और एक विशिष्ट अवधि के लिए मजदूरी और उस संबंध में विवरण निर्विवाद रूप से दायर किया गया था। इसलिए,

अधिनियम की धारा 2(ओओ)(बीबी) के प्रावधान स्पष्ट रूप से लागू हैं। इसके अलावा, नियोक्ता पर गलत तरीके से यह साबित करने की जिम्मेदारी डाल दी गई थी कि कामगार ने बर्खास्तगी की कथित तारीख से पहले 12 कैलेंडर महीनों में 240 दिनों तक काम नहीं किया था और कामगार द्वारा यह स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं रखी गई थी कि कामगार ने 12.02.1994 के बाद नौकरी के लिए स्वयं प्रस्ताव दिया था। उच्चतम न्यायालय ने मोरिंडा सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड बनाम राम किशन और अन्य 1995 एससीसी (5) 653 और अनिल बापुराव कनासे बनाम कृष्णा सहकारी साखर कारखाना: 1997 एससीसी 599 का हवाला देते हुए माना कि हमारे न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा कर्मचारी को दी गई राहत बरकरार नहीं रखी जा सकती। उच्चतम न्यायालय ने यह भी माना कि जहां तक 240 दिनों से अधिक काम करने की जिम्मेदारी का सवाल है, जैसा कि रेंज फॉरेस्ट ऑफिसर बनाम एस.टी. हदीमानी: (2002) 3 एससीसी 25, मामले में देखा गया है जिम्मेदारी कामगार पर है और प्रबंधन द्वारा दायर अपील की अनुमति दी गई थी।

यहां ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, हमें याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई मामला नहीं मिला। यह रिट याचिका बिना गुणागुण के है। परिणामत: इस तत्काल रिट याचिका को गुणागुण रहित होने के कारण अपास्त कर दिया जाता है।

(अनिल कुमार उपमन), न्यायमूर्ति **(मनींद्र मोहन श्रीवास्तव), कार्यवाहक न्यायमूर्ति**

Sudhir Asopa/21

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।
अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।